मीडिया की नैतिकता

डॉ. मीना शर्मा,

पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज (सांध्य),
दिल्ली विश्वविद्यालय

आज की मीडिया ज्यों–ज्यों पावरफुल होती जा रही है त्यों–त्यों वह संक्रमण के दलदल में भी गहरी धंसते जा रही है। यह संक्रमण मूल्य और दिशा का है। मीडिया की सत्ता ने उसे राजयोग के साथ–साथ राजरोग की व्याधि से भी घेर लिया है। मूल्य, आदर्श, सिद्धांत, दायित्व–बोध, प्रतिबद्धता, जन–सरोकार, राष्ट्रीय–सामाजिक–मानवीय हित के रास्ते से भटककर जब ताकत का गलत इस्तेमाल, निजी स्वार्थवश प्रयोग, धन–लालसा, सस्ती टी.आर.पी., सत्ता और बाजारवाद के हाथों खेलने एवं बिकने के लिए किया जाता है तब ऐसी स्थिति में मीडिया की नैतिकता का सवाल सुरसा के समान विकराल मुंह फाड़े खड़ा हो जाता है। मीडिया के अतिवाद ने इस नैतिकता के संकट को और भी अधिक गाढ़ा किया है। नैतिकता का सवाल पता नहीं मीडिया मानस को कितना मथता है, कितना आत्मालोचन के लिए अपने भीतर झांकने को विवश करता है, ताकि मीडिया अपने बचे–खुचे सम्मान की रक्षा, विश्वसनीयता और मूल्य से संपृक्त रह सके, यह एक विचारणीय प्रश्न है। पत्रकारिता के अंधाधुन्ध रेस में भागते हुए इस सवाल से बचकर नहीं भागा जा सकता है। अतएव अब एक अल्पविराम का समय है, एक ब्रेक का समय है। क्योंकि ब्रेक या अल्प विराम सिर्फ पैसा कमाने एवं बनाने के लिए ही नहीं होता है। ब्रेक सिर्फ विज्ञान के लिए नहीं होता है बल्कि यह ब्रेक आत्म–समीक्षा, स्वयं की जांच के लिए है। पत्रकारिता के मिशन और प्रोफेशन के बीच संतुलन बिठाते हुए खुद को अदालत के कठघरे में खड़ा करने का है। दूसरों को सदैव अदालत में खड़ा करना आसान है, दूसरों की सदैव टांग खींचना आसान है, दूसरों को कर्त्तव्य का पाठ पढ़ाना आसान है लेकिन क्या कभी हमने खुद के भी कान खींचे हैं? क्या कभी खुद को भी लेक्चर दिया है? क्या कभी खुद को भी कठघरे में खड़ा किया है? इस पर आंकलन करने का समय शायद आ चुका है। इस पर बहस जरूरी है अब।

किन्तु दुःख की बात यह है कि मीडिया अतिवादी प्रयासों की पराकाष्ठा में इस कदर लिप्त है कि वह इस अहसास से कोसों दूर है अथवा धन कमाने की लालसा में इस प्रोफेशन को धंधा बनाकर इतना आगे निकल चुका है कि अब उसके लिए पीछे मुड़कर नैतिक–अनैतिक, सही–गलत का प्रश्न काफी पीछे छुट गया है। इसके ठीक विपरीत वह यह तर्क अपनी सुविधा में निकाल लेता है कि जब सभी तरफ मूल्यों का क्षरण हो रहा है, राजनीति से लेकर चिकित्सा और शिक्षा के क्षेत्र तक में धन–संपदा बटोरने का जुनून–सा हावी है, तो पत्रकार से ही त्यागी, तपस्वी और साधु–संत बनने की अपेक्षा क्यों करनी चाहिए। किन्तु इस तरह के तर्कों की आड़ में खुद को समर्पित (सरेंडर) कर देना, कहां तक ठीक है!!

मीडिया और मीडियाकर्मी को कोई न तो साधु–संत बनने की सलाह देता है और न ही उसे वन–प्रस्थान और धुनी रमाने की नसीहत। यहां सवाल सत्य के प्रहरी और राष्ट्रीय सामाजिक दायित्व बोध एवं पत्रकारिता के मूल्यों की रक्षा का है। रही बात पैसों की, तो आज मीडिया हाउस

से जुड़े लोगों के पास अपने ब्रांडेड स्टूडियों, प्रेस के साथ ही साथ इतना पैसा, इतना वेतन मिल जाता है जिसमें वे सम्मान और सुविधा के साथ जी सके। गए वे दिन जब पत्रकार फटे कपड़ों, तंगहाली में भी काम करते हुए पाठकों के समक्ष पैसे के लिए मोहताज होकर गिड़गिड़ाते थे ओर ये कहते–'बहुत दिन हो गए श्रीमान, अब तो करो दक्षिणादान'। वे आर्थिक रूप से गरीब होकर भी नैतिक रूप से समृद्ध थे। किन्तु आज की मीडिया परिदृश्य बिल्कुल पूरी तरह से बदल गया है। महंगे कपड़े, सूट–बुट–टाई, लक्जरी गाड़ी, सुविधा–सम्पन्न फ्लैट्स ओर चकाचौंध की जिन्दगी जीने वाले पत्रकारों की इतनी बड़ी फौज है कि उनके मुख से साधु–संत बन जाने की बात भी आज हजम से परे है। आज सुट–बुट की सरकार भी है और सुट–बुट वाले पत्रकार भी हैं। और उनका आपसी नेक्सस भी है। नहीं है तो वह है जनता का विश्वास, सत्यनिष्ठा, मूल्यबोध, राष्ट्रीय सामाजिक दायित्व बोध का अहसास और मास की चिंता एवं सरोकार। इस संदर्भ में पत्रकारिता की दुनियां के एक बड़े नाम एवं वरिष्ठ पत्रकार कुलदीप नैयर का यह विचार विचारणीय है जो उन्होंने प्रभात खबर नामक अखबार के साथ बातचीत में रखा था–''**हमारा वह समय अभी पूरी तरह विस्मृत नहीं हुआ है जब पत्रकार सचमुच ईमानदारी से काम करते थे। तब पैसे की इतनी चकाचौंध नहीं था। उन दिनों पाठकों ने कभी यह शिकवा नहीं किया कि हम पत्रकारों ने उनके विश्वास को तोड़ा है। आज मुझे लगता है हमारे देश में प्रतिबद्धता की कमी है। मूल्यों के प्रति दृढ़ता नहीं रही। आदर्शवादिता और राष्ट्रीय सामाजिक दायित्व बोध का असर नहीं रहा। कई अखबारों के संपादक अब मालिकों के पी.आर.ओ. बन गये हैं। अब ऐसी स्थिति में संपादक और पत्रकार दोनों देखते हैं कि जब हमारों के लिए 'पीआरओशिप' का काम करते हैं, तो अपने लिए क्यों न करें। और फिर वे भी पैसा कमाने लग जाते हैं। यानी जो वातावरण है वह अच्छी और स्वस्थ पत्रकारिता के प्रतिकूल है। लेकिन सोचिए, क्या हम भी इस रंग में रंग जाएं? यदि हम भी इस बहाव में वह गए तो देश का क्या होगा?''**

कुलदीन नैय्यर की यह टिप्पणी मीडिया की नैतिकता एवं व्यवहार पर बिल्कुल फिट बैठती है। 'इस हमाम में सभी लोग नंगे हैं' तो क्या हम भी वैसा ही बन जाएं? आज मीडिया का नंगापन दिखने लगा है। सुधीर चौधरी और समीर अहलुवालिया छः वर्ष पूर्व किसी कॉरपोरेट जगत की छवि चमकाने के नाम पर 200 करोड़ रुपये की मांग करते हुए खुद ही स्टिंग आपरेशन के जाल में खुफिया कैमरे में कैद हो गए और फिर तिहाड़ जेल में भी 14 दिनों के लिए कैद भी। दूसरे को लक्चर देना, नैतिका का पाठ पढ़ाना आसान है लेकिन खुद अपनी नैतिकता के सवाल को टाल जाना, नैतिकता की लक्ष्मण रेखा से बाहर रखना, कय वह न्याय संगत है? इस यक्ष प्रश्न का उत्तर मीडिया बिरादगी को देना होगा अथवा खोजना होगा। मीडिया अपनी दुखती रग को स्वयं नहीं छेड़ता है। हां, मीडिया अपनी दुकान को चलाने, चमकाने के लिए जुमले और मुहावरे खोजकर लोगों को भरमाने का कार्य अवश्य करता है। अभी हाल में ही एक नये टी.वी. न्यूज चैनल ने खुद को लांच करते हुए अपनी तारीफ और अन्य मीडिया बिरादरी के न्यूज चैनल पर कटाक्ष करते हुए कहता है, **'सर्कस इन ओवर, न्यूज इन बैक।'** किन्तु अपनी ही मीडिया हाउस के ऊपर जब कोई बाहर का व्यक्ति कोई सेलिब्रेटी, कोई नेता जब दलाली करने का, पक्षपात करने का, निजी जीवन में घुसपैठ कर उसे बेचने का आरोप ज्योंही लगाता है, त्योंहि वे मीडियावाले तिलमिला जाते हैं, इसे वे मीडिया पर हमला, मीडिया की स्वतंत्रता पर हमला बताकर चिल्लम–चिल्ली मचाने लगते हैं। सचमुच में खबरों की सौदागरी करने का सवाल मीडिया की नैतिकता के लिए एक बड़ा चिंता का विषय है। किसी भी खबर के मानवीय और नैतिक पहलू को

गायब कर चलाना मानवीय संवेदनशीलता की कमी के साथ–साथ पत्रकारिता की संवेदनशीलता और सरोकार से जुड़ा हुआ मामला है।

आज मीडिया चकाचौंध, धन कमाने की लिप्सा और स्पर्धा की दौड़ में इस कदर बुरी तरह भटक गया है कि वह कई प्रकार के व्याधि से ग्रस्त हो चुका है। एक तरफ मीडिया को अपनी सत्ता का दर्प और दंभ की व्याधि है तो दूसरी तरफ सत्ता की जी हुजूरी और खुशामद से लबरेज रहने की बीमारी है। वह यह तो जानता है मीडिया की एक बड़ी ताकत है, इसकी पहुँच करोड़ों लोगों तक है, वह सरकारे बनवा सकती हैं, गिरवा सकती है, कुर्सी हिला सकती है और बनवा सकती हैं, और अपना मत जनता पर थोपकर उनका मन मोड़ सकती है किन्तु इस ताकत का सही और नैतिक इस्तेमाल भी करना होता है, यह आदर्श और सिद्धांत वह धीरे–धीरे भूलती जा रही है। आज की मीडिया तानाशाह, अड़ियल और अविवेकी अतिवाद की दिशा में जा रहा है। एक पत्रकार के लिए सही रास्ता क्या हो, अतिवाद से बचने का उपाय क्या हो, सूचना के शस्त्र और शक्ति का सही इस्तेमाल कैसे हो, इस संबंध में एडिटर्स गिल्ड ऑफ इंडिया ने करीब 30 वर्ष पूर्व एक मार्गदर्शिका (गाइडलाइंस) बनाई थी, जिनमें पत्रकारों को सात महापापों से दूर रखने हेतु व्याधियों से दूर रहकर स्वस्थ पत्रकारिता करने हेतु निम्नलिखित महापापों का उल्लेख किया था। वे महापाप हैं–''पीत पत्रकारिता, सनसनीखेज प्रस्तुति, तथ्य में अपनी टिप्पणी का मिश्रण, जब तक व्यापक जनहित के लिए आवश्यक न हो किसी के निजी जीवन में तांक–झांक करते हुए किसी की निजता में दखल देना, अपनी ओर से किसी का ट्रायल करना और फैसला भी सुना देना, अपना पक्ष रखने के अधिकार से किसी को वंचित रखना तथा द्वेषमूलक पूर्वाग्रह अपनाना।''

किन्तु दुर्भाग्य की बात है कि इन महापापों के स्थान पर आज की मीडिया उन्हीं महापापों में 'आकंठ' निमग्न है। किसी बीमारी का इलाज तभी संभव होता है जब बीमार स्वयं अपनी बीमारी को बीमारी माने। निरोग होने के लिए रोग का अहसास जरूरी है। लेकिन ऐसा लगता है कि मीडिया यह अहसास करना भी जरूरी नहीं समझती है बल्कि इस मूलमंत्र के साथ महापाप के कृत्यों में लगी रहती है कि 'गंदा है लेकिन धंधा है यह।' और धंधे में सब कुछ चलता है। तब ऐसी बीमारी की हालत में समय और मानवीय संवेदना के प्रहरी ही जब जागने के स्थान पर सो जाएगा, वैसी स्थिति में मीडिया का मूल चरित्र ही समाप्त हो जाएगा।

गंगा के समान मीडिया की निर्मल धारा दिनों–दिन यदि गंदी और कलुषित होती गई तो इसका पानी न तो स्नान योग्य–होगा, न आचमन योग्य, पीने का तो सवाल ही नहीं उठता है। मीडिया की भेड़चाल और प्रतिस्पर्धात्मक अतिवाद ने इस परिदृश्य को और भी अधिक जटिल एवं चिंताजनक बना दिया है। जिसकी आत्मसमीक्षा खुद मीडिया के भीतर से होना चाहिए। बाह्य अन्य कोई उपाय कारगर सिद्ध नहीं होंगे। एक आन्तरिक विवेक के साथ–साथ दायित्वपूर्ण पत्रकारिता के सरोकार से अन्ततः जुड़े बिना इस व्याधि पर काबू नहीं पाया जा सकता है। और पत्रकारिता के स्वस्थ हुए बिना देश की बीमारी को दूर नहीं किया जा सकता है। मीडिया की नैतिकता का सवाल पत्रकारिता और देश दोनों के स्वास्थ्य से जुड़ा हुआ सवाल है। इसी से जुड़ा हुआ है मीडिया के सम्मान का सवाल। और यह सवाल प्रासंगिक एवं विचारणीय है।

सन्दर्भ

1. डॉ. अरुण जैन, पत्रकारिता और पत्रकारिता, हिन्दी बुक सेन्टर, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण–2003.
2. डॉ. विनोद गोदरे, वाणी प्रकाशन, सं.

2000, हिन्दी पत्रकारिता : स्वरूप एवं सन्दर्भ

3. डॉ. हरीश अरोड़ा, जनसंचार, युवा साहित्य चेतना मण्डल, नई दिल्ली
4. डॉ. हरीश अरोड़ा, पत्रकारिता का बदलाता स्वरूप और न्यू मीडिया, साहित्य संचय, नई दिल्ली
5. डॉ. हरीश अरोड़ा, ग्लोबल मीडिया और हिन्दी पत्रकारिता, साहित्य संचय, नई दिल्ली

Copyright © 2016, Dr. Meena Sharma. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.